योजना

OJAANK IAS ACADEMY

AUGUST, 2022 WWW.OJAANKEDU.COM 8750711100/44

OJAANK IAS ACADEMY

Our Selected Students in IAS 2020

Congratulations to Our Toppers

01 Ranks in Top 10 | **10** Ranks in Top 50 | **26** Ranks in Top 100

RANK 01
SHRUTI SHARMA

RANK 58
FAIZAN AHMED

RANK 96
MINI SHUKLA

RANK 125
MD. MANZAR HUSSAN ANJUM

RANK 133
KISHLAY KUSHWAHA

RANK 176
SHREYA SINGHAL

RANK 203
MOHAMMAD AAQUIB

RANK 270
HARIS SUMAIR

RANK 283
AHMED HASANUZZAMAN CHAUDARY

RANK 389
MOHIBULLAH ANSARI

RANK 447
FAISAL RAZA

अंग्रेजी विभाजन साहित्य

- दुनिया के विभिन्न हिस्सों में विभाजन के बारे में साहित्यिक प्रतिबिंबों की लक्षणात्मक प्रकृति को देखा जा सकता है जहाँ उत्तर-औपनिवेशिक दुनिया में विभाजन के मूल भाव की केंद्रीयता, प्रमुख विशेषताओं में से एक है।
- 20वीं सदी में दुनिया ने कई विभाजन देखे हैं जैसे इजराइल-फिलिस्तीन, आयरलैंड-इंग्लैंड, जर्मनी का विभाजन (और निश्चित रूप से इसका पुनर्मिलन), पूर्व यूगोस्लाविया का विभाजन, कोरिया और वियतनाम का विभाजन आदि। प्रत्येक मामले में, क्षेत्रीय विभाजन प्रस्ताव ने दोनों पक्षों के लोगों के लिए गंभीर समस्याएँ पैदा की हैं, और लंबे समय तक मानव जीवन को अस्थिर किया है।
- प्रत्येक मामले में, विभाजन प्रस्ताव को एक मजबूत राज्य-तंत्र द्वारा कमज़ोर पक्ष पर अपने विस्तार के लिए लागू किया गया था, उसकी देखरेख की गई, जिसने 'राष्ट्रवाद के क्षण' को उकसाया, जिसने नई राष्ट्रीय पहचान पैदा की। इसलिए विभाजन साहित्य का पता लगाने के लिए, विषम पहचानों के चश्मे से देखना आवश्यक है।
- औपनिवेशिक काल के बाद के समय में रहते हुए, विभाजन साहित्य न केवल राष्ट्र शिल्प की प्रति-तथ्यात्मकता को खोलता है, बल्कि अलग-अलग देशों में जीवन के आसपास के क्षेत्र की खोज भी करता है।
- विभाजन साहित्य का आधार साहित्यिक शैली के रूप में विकसित हुआ और 1970 के दशक में स्वीकार किया गया, हालांकि यह राष्ट्र-स्थिति के आगमन और औपनिवेशिक उद्यम के अंत के साथ शुरू हुआ।
- विभाजन साहित्य का यह पूरा दायरा परस्पर-विवादात्मक सामाजिक-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता और सांस्कृतिक विमर्श के एक क्षेत्र के रूप में उभरा है।

राष्ट्र के साथ आधुनिक दक्षिण एशिया को आकार-

- **भारत तीन बार विभाजित राष्ट्र है जहाँ तीन अलग-अलग देशों के गठन के लिए तीन विभाजन हुए हैं। यदि समयरेखा में देखा जाए, तो 1905, 1947 और 1971 के बाद की घटनाओं ने पाकिस्तान, बांग्लादेश और भारत के नए कॉन्फिगर किए गए राष्ट्र के साथ आधुनिक दक्षिण एशिया को आकार दिया है।**
- **ब्रिटिश भारत, बंगाल प्रांत और पंजाब प्रांत के विभाजन ने भारत के उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया को पूरा किया। सामाजिक-राजनीतिक और सांस्कृतिक प्रगति की इस जटिल प्रक्रिया के साथ, यह देखा गया है कि भाषा ने ऐतिहासिक वास्तविकताओं को एकीकृत या विघटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।**
- **उर्दू, हिंदी, पंजाबी, बंगाली, सिंधी उस भाषा आधारित पहचानों की प्रमुख घटक हैं जो राष्ट्रीयता की लघुता को बताती हैं और जिससे साहित्यिक प्रयास मेल खाता है।**

सतत तबाही- एक जटिल मानव त्रासदी-

- **यह विभाजन की प्रक्रिया में सतत तबाही- "एक जटिल मानव त्रासदी" की विशालता को दर्शाता है। 1946 में 'ग्रेट कलकत्ता किलिंग' से लेकर नौखली दंगे तक, अमृतसर से लेकर लाहौर तक, सभी जगह भयावह और विचित्र नजारा विभाजन के एक और चेहरे -नए स्वतंत्र भारत के उद्भव पर अवांछित स्थितियों का निर्माण कर रहा था।**
- **इतिहास की प्रमुख आवाज़ों का जिक्र करते हुए मुशीरुल हसन ने टिप्पणी की- "स्वतंत्रता और विभाजन के ऐतिहासिक वृत्तांतों से अधिक, विस्थापन के व्यक्तिगत इतिहास भारतीय राष्ट्रवाद, धर्मनिरपेक्षता, अहिंसा और वास्तव में लोकतांत्रिक देश के महान आदर्शों के साथ विश्वासघात को दर्शाते हैं।"**
- **इस श्रेणी में मुख्य रूप से लघुकथा और उपन्यासों का उल्लेख किया जा रहा है, हालाँकि, विभाजन पर थोड़ी बहुत कविताएँ और नाटक भी लिखे गये हैं। हिन्दी और उर्दू के लेखक इस क्षेत्र में अग्रणी थे।**
- **इनमें शामिल हैं-सआदत हसन मंटो, शायद भारतीय विभाजन के सबसे बेहतरीन लेखक हैं, जिन्होंने अपने व्यक्तिगत जीवन में विभाजन की हिंसा, अनिश्चितता, आघात का व्यक्तिगत जीवन में अनुभव किया और विभाजन की घटना के लिए मानव वृत्ति के पारस्परिक संबंध को कल्पना में पिरोया।**
- **'ठंडा गोश्त', 'टोबा टेक सिंह, 'खोल दो', 'डॉग ऑफ टिटवाल' जैसी कहानियों को भारतीय संदर्भ में लिखे गए विभाजन के**

आघात की अब तक की सबसे गहरी याद के रूप में पढ़ा जा सकता है।
• फैज अहमद फैज ने अशांति के समय कुछ यादगार शायरी और नज़्म लिखीं। पश्चिमी पक्ष के कई उर्दू और हिंदी लेखकों द्वारा लिखित पर्याप्त स्मृति लेख जैसे कृष्ण चंदर की लघु कहानी (पेशावर एक्सप्रेस), कुर्रतुलन हैदर (आग का दरिया, 1959), यशपाल (झूठा सच, 1958-60), नसीम हिजाजी (खाक और खून), राही मासूम रजा (आधा गाँव), खुशवंत सिंह (ट्रेन टू पाकिस्तान, 1990), कमलेश्वर (कितने पाकिस्तान, 2000) आदि।
• ये दर्दनाक अनुभव, हिंसा, बलात्कार और महिलाओं का अपहरण, शरणार्थी की पीड़ादायक स्मृति और जीवन के अज्ञात भाग्य के बारे में हैं।
• हाल में कृष्णा सोबती ने अपने आखिरी उपन्यास 'ए गुजरात हियर, ए गुजरात देयर' (2017) में व्यक्त किया कि बंटवारे में अपने बचपन की दोस्त की हत्या की याद में वह कैसे जीवन भर विचित्र-सी वेदना में रही थीं।

हिंसा का विषयगत स्वभाव और इसकी अनिश्चितता-

- विभाजन हिंसा का विषयगत स्वभाव और इसकी अनिश्चितता किसी तरह एक पैटर्न दे रही है जिसका अब पता लगाया जा सकता है। लेकिन दशकों की निरंतरता के बाद, जैसा कि हाल के उपन्यासों में व्यक्त किया गया है विभाजन का विषय स्पष्ट रूप से नई प्रवृत्तियों को दिखा रहा है। शाश्वत दर्दनाक आयाम को जटिलताओं द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है।
- दूसरी ओर, बांग्ला लेखकों ने इस प्रयास में कुछ देर से प्रतिक्रिया दी है, हालांकि, बंगाल विभाजन पर बंदोपाध्याय के तीन समकालीन (ताराशंकर, माणिक और विभूतिभूषण) की अभिव्यक्ति का साथ-साथ पता लगाया जा सकता है।
- भारतीय अंग्रेजी लेखक या अंतरराष्ट्रीय ख्याति के एनआरआई लेखकों ने भी अपने उपन्यास लेखन में लेखकों ने भी अपने उपन्यास लेखन में केंद्रीय विचार के रूप में विभाजन के विषय को चुना है।

मध्य भारत में स्वतंत्रता संग्राम

- 1857 के पहले भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासियों ने बार-बार विद्रोह किए थे और जिनके फलस्वरूप आदिवासी क्षेत्रों में अंग्रेजों को अपनी सत्ता स्थापित करने में बहुत संघर्ष करना पड़ा। ऐसे विद्रोहों का तो संदर्भ भी आसानी से नहीं मिलता है।
- यद्यपि पूरे देश भर में 1857 के पहले और उसके बाद हुए स्वतंत्रता आंदोलन में आदिवासियों का योगदान महत्वपूर्ण था तथापि हम यहाँ भारत के मध्य भाग में छत्तीसगढ़ में ही हुए ऐसे आंदोलनों की चर्चा कर रहे हैं।

1857 के पहले आठ आदिवासी विद्रोह

- सन् 1757 में प्लासी के युद्ध को जीतने के बाद और 1765 में बंगाल, बिहार और ओडिशा की दीवानी हासिल करने के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी ने छत्तीसगढ़ को अपने कब्जे में करने के प्रयास शुरू किए थे।
- छत्तीसगढ़ के मध्य भाग के अधिकांश क्षेत्र पर नागपुर के मराठा शासकों का अधिकार था और शेष क्षेत्रों में अलग-अलग देसी रियासतें थीं। अंग्रेजों को पहली सफलता सन् 1800 में मिली जब रायगढ़ के राजा ने कंपनी सरकार के साथ एक संधि कर रायगढ़ को कंपनी सरकार का हिस्सा बनाया।
- नागपुर में मराठा शासकों के साथ 1818 में हुए युद्ध में पराजय के बाद मराठा राज्य पर अंग्रेजों का कब्जा हो गया और इसके साथ ही छत्तीसगढ़ के मध्य क्षेत्र पर अंग्रेज़ शासन करने लगे। बहरहाल, छत्तीसगढ़ के दक्षिण में बस्तर तथा उत्तर में सरगुजा क्षेत्रों में आदिवासियों ने अपने राज्यों को कंपनी सरकार की गुलामी से बाबा के लिए अनेक विद्रोह किए थे।

हलबा आदिवासी विद्रोह-

- इन विद्रोहों में सन् 1774 से लेकर 179 तक हलबा आदिवासियों ने अंग्रेजों के विरुद्ध जो युद्ध किया था वह अत्यंत रोमांचक और रक्तरंजित था।
- बस्तर पर कब्जा करने के लिए अंग्रेजों ने जैपुर के राजा और बस्तर के राजा के छोटे भाई दरियावदेव सिंह को साथ लिया और एक सम्मिलित सेना बनाकर 1774 में बस्तर के राजा अजमेर सिंह पर आक्रमण किया।

- अजमेर सिंह की सेना में हलबा आदिवासी थे और उन्होंने अंग्रेज सेना को धूल चटा दी। यह युद्ध 1779 तक चला किन्तु अंग्रेजों को सफलता नहीं मिली। बाद में दरियावदेव सिंह ने धोखे से अजमेर सिंह का वध कर दिया।
- अजमेर सिंह की मृत्यु के बाद हलबा सेना नेतृत्व विहीन हो गई और तब अंग्रेज़ सेना ने बस्तर के हलबा आदिवासियों को चुन-चुनकर मार डाला। यह नरसंहार की इतनी बड़ी घटना थी कि जिसमें एक पूरी जाति का सफाया करने का तांडव किया गया।
- यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के विरुद्ध पूरे भारत में किया जाने वाला यह पहला विद्रोह था और बस्तर के राजा अजमेर सिंह इसके पहले शहीद थे।

सरगुजा विद्रोह-

- **अंग्रेजों के विरुद्ध दूसरा विद्रोह 1792 में सरगुजा के अजीत सिंह ने किया था। अंग्रेजों ने सरगुजा पर कब्जा करने का षड्यंत्र किया किन्तु वे सफल नहीं हुए। उसके बाद अंग्रेजों ने मराठा सेना के साथ मिलकर अजीत सिंह पर आक्रमण किया। अजीत सिंह की आदिवासी सेना ने जमकर मोर्चा लिया। इस युद्ध में अजीत सिंह शहीद हो गए।**

बस्तर के गोंड सैनिकों का विद्रोह-

- **अंग्रेजों के विरुद्ध तीसरा विद्रोह बस्तर के भोपालपटनम् में 1795 में हुआ। इस विद्रोह के ज़रिए बस्तर के शासक दरियावदेव के गोंड सैनिकों ने अंग्रेजों को बस्तर में प्रवेश करने से रोक दिया था।**

परलकोट विद्रोह -

- **आदिवासी विद्रोह की कड़ी में चौथा विद्रोह परलकोट में हुआ था। उस समय परलकोट बस्तर शासकों का मुख्यालय था। बस्तर में अंग्रेजों को आने से रोकने के लिए गेंद सिंह के नेतृत्व में अबूझमाडिया आदिवासी ने संघर्ष किया।**
- **इस विद्रोह को दबाने के लिए चांदा से आधुनिक हथियार से युक्त अंग्रेज सेना आई। 10 जनवरी, 1825 को गेंद सिंह को गिरफ्तार कर उसके महल के सामने ही सरे आम फाँसी पर लटका दिया गया।**

छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल आदिवासियों का विद्रोह-

- **फिर पाँचवाँ विद्रोह दिसंबर, 1831 में छोटा नागपुर क्षेत्र में कोल आदिवासियों ने शुरू किया। आदिवासियों की भूमि को जबरदस्ती हथियाने के कारण उपजे असंतोष से इस विद्रोह का सूत्रपात हुआ था।**
- **यह विद्रोह 1932 तक चला और फिर इसे अंग्रेजों ने एक बड़ी सेना लाकर दबा दिया। इसके बाद छठा विद्रोह 1833 में हुआ, जब अंग्रेज़ बड़गढ़ पर कब्जा करना चाहते थे। बडगढ़ के राजा अजीत सिंह के नेतृत्व में रायगढ़ के आदिवासियों ने अंग्रेज सेना का जमकर विरोध किया। इस संघर्ष में अजीत सिंह वीरगति को प्राप्त हुए।**

बस्तर क्षेत्र में तारापुर विद्रोह-

- **तदुपरांत सातवाँ विद्रोह बस्तर क्षेत्र में 1842 में तारापुर में हुआ। तारापुर में बस्तर के शासक भूपलदेव का भाई दलगंजन सिंह तारापुर का प्रशासक था। दलगंजन सिंह ने अपने क्षेत्र में वार्षिक टैक्स बढ़ाना नामंजूर कर दिया।**
- **दलगंजन सिंह के इस व्यवहार को अंग्रेजों ने विद्रोह माना और उसे दबाने के लिए नागपुर से एक सेना भेजी। इस बीच क्षेत्र की आदिवासी जनता भी तैयार हो गई थी, और उसने दलगंजन सिंह के नेतृत्व में अंग्रेजों की सेना का सामना किया। युद्ध में दलगंजन सिंह पराजित हुआ और उसे जेल में डाल दिया गया।**

दक्षिण बस्तर में दंतेवाड़ा विद्रोह-

- 8वां विद्रोह दक्षिण बस्तर में दंतेवाड़ा में नरबलि की प्रथा को लेकर अंग्रेजों के आदेश के विरुद्ध आदिवासियों ने 1842 में किया। इस विरोध को रोकने के लिए अंग्रेजों की सेना नागपुर से आई। इस सेना से आदिवासियों ने जमकर लोहा लिया। एक संघर्ष के बाद नरबलि प्रथा रुकी और दंतेवाड़ा में स्थायी सैनिक व्यवस्था कायम की गई।

आदिवासियों की स्वाधीन चेतना आहत-

- अंग्रेजों द्वारा लगान वसूली के लिए की गई नई व्यवस्था, परपरागत सामाजिक, धार्मिक और राज व्यवस्था को बदलने के प्रयासों, वनप्रबंधन के लिए लागू किए गए नये नियमों और मदिरा के निर्माण पर लगाई गई रोको के कारण आदिवासियों की जल, जंगल और जमीन की अपनी अनूठी संस्कृति प्रभावित हो रही थी।
- अंग्रेजों द्वारा इन उपायों का सहारा लेकर आदिवासियों की स्वाधीन चेतना को भी आहत किया गया था। इस तरह आदिवासियों ने अपनी संस्कृति और स्वायत्तता की रक्षा के लिए ये विद्रोह किए थे जो छत्तीसगढ़ में अंग्रेजों के विरुद्ध स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक विरासत हैं।
- भारत के इतिहास में 1857 के पहले छत्तीसगढ़ के आदिवासियों के द्वारा किए गए इन आठ विद्रोह का कोई उल्लेख नहीं मिलता किन्तु ये विद्रोह अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासियों के अथक और क्रांतिकारी संघर्ष का प्रमाण देते हैं।

1857 का पहला विद्रोह सोनाखान

- सन् 1857 में रायपुर के सोनाखान के आदिवासी जमींदार नारायण सिंह ने अद्भुत विद्रोह किया था। उनकी जमींदारी वाले क्षेत्र में सूखा पड़ गया था और नारायण सिंह ने अपनी जनता को भूख से काल कवलित होने से बचाने के लिए एक साहूकार के यहाँ जमा किया गया धान निकलवा कर बंटवा दिया था।
- अंग्रेजों ने नारायण सिंह को गिरफ्तार करने के लिए एक बड़ी सेना को सोनाखान भेजी। कड़े संघर्ष के बाद नारायण सिंह को गिरफ्तार कर लिया गया और उन्हें 10 दिसंबर, 1857 को रायपुर में सार्वजनिक रूप से फाँसी दे दी गई।
- नारायण सिंह को स्वतंत्र भारत में 'वीर' की उपाधि से सम्मानित कर छत्तीसगढ़ में 1857 का प्रथम शहीद घोषित किया गया हैं।

रायपुर में देसी पैदल सेना का विद्रोह

- नारायण सिंह को फाँसी देने के विरोध में रायपुर में तैनात अंग्रेजों की देसी पैदल सेना ने 18 जनवरी, 1858 को विद्रोह कर दिया। पैदल सेना के मैगजीन लश्कर हनुमान सिंह ने एक अंग्रेज़ सार्जेंट मेजर पर हमला कर दिया। इस हमले में सार्जेंट मेजर की मृत्यु हो गई।
- यह विद्रोह लम्बा नहीं चल सका और अंग्रेजों द्वारा की गई एक बड़ी कार्रवाई में पैदल सेना के 17 लोगों को गिरफ्तार कर 22 जनवरी, 1858 को नागरिकों के समक्ष फाँसी दे दी गई।

मुरिया आदिवासी विद्रोह

- सन् 1858 में रायगढ़ जिले के उदयपुर में आदिवासियों ने विद्रोह किया। इस विद्रोह के फलस्वरूप उदयपुर के नरेश के भाइयों को गिरफ्तार कर अण्डमान की जेल में भेज दिया गया। बस्तर के मुरिया आदिवासियों ने 1876 में विद्रोह किया।
- इस विद्रोह को दबाने के लिए अंग्रेजों की एक बड़ी सेना ओडिशा क्षेत्र से भेजी गई और कोई एक माह की घेरा बंदी के बाद अंग्रेजों को सफलता मिली। इसके बाद 1878 में बस्तर की रानी ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष शुरू किया जो 1882 तक चला।
- इस विद्रोह के फलस्वरूप नारी अस्मिता की रक्षा हुई और अंग्रेज़ सरकार को रानी के समक्ष झुकना पड़ा।

बस्तर का भुमकाल

- बस्तर में ही सन् 1910 में एक जबरदस्त विद्रोह हुआ जिसे आधुनिक इतिहास में 'बस्तर का भुमकाल' के नाम से जाना जाता है। बस्तर के मुरिया आदिवासियों ने ब्रिटिश राज्य को नेस्तनाबूद कर 'मुरिया राज' की स्थापना के लिए सशस्त्र क्रांति की जिसकी अगुआई गुंडाधुर ने की थी।
- यह विद्रोह अत्यंत विस्तृत योजना बनाकर किया गया था जिससे पूरे बस्तर में भूचाल सरीखा आ गया। आदिवासियों ने अंग्रेजों को निशाना बनाया और सरकारी इमारतों पर आक्रमण किया।

COPYING@OJAANKIAS

- 1 फरवरी, 1910 को शुरू हुए इस विद्रोह की अग्नि तीन माह तक धधकती रही। शुरू में कुछ समय तक पूरे बस्तर में मुरिया राज स्थापित हो गया किन्तु अंग्रेजों की एक बड़ी सेना के विरुद्ध गुंडाधुर की सेना टिक नहीं सकी। इस संघर्ष सैंकड़ों आदिवासी मौत के घाट उतार दिए गए और हज़ारों को कठोर दण्ड भुगतना पड़ा।
- छत्तीसगढ़ के उत्तर-पूर्व में 1916 में ताना भगत आंदोलन शुरू किया गया जो 1918 तक चला। यह आंदोलन पहले हिंसक था किन्तु बाद में इस आंदोलन के अनुयायी अहिंसक असहयोग आंदोलन करने लगे और भारत की स्वतंत्रता आंदोलन का हिस्सा बन गया।

जंगल सत्याग्रह

- छत्तीसगढ़ का एक और आंदोलन-1922 में धमतरी जिले के नगरी में हुआ जंगल सत्याग्रह- पूरे स्वतंत्रता संग्राम में अनूठी पहचान रखता है। आदिवासियों ने वन विभाग द्वारा कम मजदूरी देने और घर पर चूल्हे में जलाने के लिए लकड़ी ले जाने पर लगे प्रतिबंध को लेकर अधिकारियों के विरुद्ध सत्याग्रह किया था। इस आंदोलन में बड़ी गिरफ्तारियाँ हुई और सत्याग्रहियों को सज़ा दी गई।
- बाद में वन विभाग ने कार्यप्रणाली सुधारी और यह आंदोलन बंद किया गया। किन्तु अगस्त, 1930 में फिर पूरे छत्तीसगढ़ में जगह-जगह पर जंगल सत्याग्रह शुरू हुआ। इस सत्याग्रह के तहत तमेरा नामक स्थान पर हजारों की भीड़ इकट्ठा हुई और भीड़ को जब रोकने का प्रयास किया तो एक महिला दयावती ने अधिकारी को चांटा मारा।
- स्थिति को अधिकारियों ने बिगड़ने से बचा लिया। कुछ लोग गिरफ्तार हुए। एक स्थान पर पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें एक आदिवासी की मृत्यु हुई। यह आंदोलन मार्च, 1931 तक चलता रहा और भारत में सविनय अवज्ञा आंदोलन की वापसी के साथ यह आंदोलन बंद हुआ।
- स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास केवल घटनाओं का विवरण देना या प्रसंगों की गिनती करना मात्र नहीं है। स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास उसके नायकों का चरित्र विवरण देना भी नहीं है।
- स्वतंत्रता आंदोलन वास्तव में उन धाराओं और प्रतिरोधी धाराओं का विश्लेषण करना है जिनसे उस समय के क्षुब्ध समाज की संरचना बनी थीं। जनता के मन और मस्तिष्क में स्वतंत्र होने के लिए आंतरिक चेतना थी और जिसकी अभिव्यक्ति संघर्ष के रूप में हो रही थी, उस चेतना और उसकी अभिव्यक्ति की पहचान आवश्यक है।

हिंदी की साहित्य-चेतना

- हिंदी आजादी के आंदोलन की भाषा बनी। यह स्वाभाविक था कि गुजरात के मोहनदास गाँधी, वल्लभ पटेल, बंगाल के सुभाष बोस, पंजाब के लाजपत राय, महाराष्ट्र के गोपालकृष्ण गोखले और तमिलनाडु के राजगोपालाचारी, जब अपने प्रांतों से बाहर देश को संबोधित करने निकले तो उन्हें हिंदी में ही अपनी बात रखनी पड़ी।
- हिंदी स्वाधीनता संग्राम की व्यावहारिक आवश्यकता थी। जिस गति से आजादी की लड़ाई विकसित हुई, उसी गति से हिंदी गद्य का विकास हुआ। फिर इसी अनुपात में हिंदी की साहित्यिक चेतना पल्लवित हुई।
- अत: हिंदी की साहित्य-चेतना अनिवार्य रूप से स्वाधीनता आंदोलन से संबद्ध रही। इसका तात्पर्य यह हुआ कि वह उन मूल्यों से संबद्ध रही, जो आजादी के आंदोलन के मूल्य थे।

वे मूल्य क्या थे?

उन मूल्यों को किन विचारों ने सींचा था?

- वे मूल्य आधुनिक भारत के निर्माण की अंतर्वस्तु थे। इन मूल्यों को रचने में राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, श्री अरविंद, बाल गंगाधर जैसे महान विचारकों-नेताओं का जीवन व संघर्ष लगा था।
- इन मूल्यों का संबंध भारतीय समाज में जातिभेद-उन्मूलन, स्त्री-मुक्ति, स्त्री-शिक्षा, समता, स्वतंत्रता, लोकतंत्र आदि लक्ष्यों से था। कुल मिलाकर 19वीं सदी, 18वीं सदी के मध्यकालीन सामंती भारत और 20वीं सदी के लोकतांत्रिक आधुनिक भारत के बीच का संक्रमण काल थी।

- भारत की स्वतंत्रता का संघर्ष सिर्फ विदेशी गुलामी से मुक्ति का संघर्ष नहीं था। भारत जिस कारण से गुलाम हुआ था, वह सामाजिक पतन दूर हो और नए समाज की संरचना हो, यह इस संघर्ष का लक्ष्य था। इसी लक्ष्य के अनुरूप भारत में एक नई वैचारिकी उत्पन्न हुई। इस नई वैचारिकी का वाहक भारत की सभी भाषाओं का आधुनिक साहित्य बना।
- बांग्ला में सबसे पहले, तत्पश्चात, हिंदी, मराठी, मलयालम, तमिल, ओड़िया, पंजाबी, गुजराती, उर्दू आदि सभी भारतीय भाषाओं में इस नई चेतना से भास्वर साहित्य का सृजन हुआ। हिंदी साहित्य भी स्वतंत्रता की इस चेतना का वाहक बना। अनिवार्यत: यह स्वातंत्र्य चेतना समाज सुधार और व्यक्ति के नवनिर्माण के आधार पर साहित्य में विकसित हुई।
- साहित्य को उस मन का निर्माण भी करना था, जो स्वतंत्रता का महत्व समझ सके, जो स्वतंत्रता के समस्त आयामों को स्वयं में धारण कर सके। साहित्य को उस समाज का निर्माण भी करना था, जो स्वतंत्रता के अनुरूप अपना पुनर्गठन कर सके।

अत: हिंदी साहित्य में स्वतंत्रता आंदोलन की अभिव्यक्ति निम्न रूपों में हुई-

1. समाज सुधार
2. भारतीय इतिहास का गौरव कथन
3. प्राचीन साहित्य व पुराकथाओं का नवीन संस्कार
4. देशानुराग
5. प्रकृति प्रेम
6. मानव प्रेम व विश्व प्रेम
7. व्यक्ति स्वातंत्र्य का स्वर
8. समाजवाद

- समाज-सुधार उस युग के कवियों का प्रमुख स्वर था। इस संदर्भ में हम भारतेंदु के नाटक अंधेर नगरी को याद कर सकते हैं, जिसमें सामाजिक विडंबनाओं को तीखे ढंग से व्यक्त किया गया था।
- भारतीय इतिहास का गौरव-कथन नाटकों, कहानियों, उपन्यासों व काव्य के जरिए बड़े पैमाने पर व्यक्त हुआ। प्रसाद की ऐतिहासिक कहानियाँ व ऐतिहासिक नाटक, निराला की इतिहास आधारित अनेक कविताएँ इसका उदाहरण हैं।
- 19वीं सदी और 20वीं सदी के पूर्वार्ध में ही अंग्रेजों ने नालंदा, अजंता, हड़प्पा जैसे स्थलों को खोजा और प्राचीन यात्रियों के यात्रा विवरणों की मदद से उनकी ऐतिहासिकता स्थापित की।
- भारतीय इतिहास का प्राचीन काल पूरे वैभव के साथ सामने था। इस खोज ने जहाँ एक ओर राष्ट्रवादी इतिहास को जन्म दिया, वहीं दूसरी ओर साहित्य को कथा, उपन्यास, नाटक व काव्य के लिए ढेरों चरित्र व कथानक उपलब्ध करा दिया।
- प्राचीन काल का गौरवमंडन बीसवीं काल के पूर्वार्ध के हिंदी साहित्य का एक मुख्य स्वर रहा। इसे शक्ति मिली बांग्ला साहित्य के हिंदी अनुवादों के जरिए।
- 19वीं सदी के अंतिम दशकों और 20वीं सदी के प्रारंभिक दशकों में, जब हिंदी गद्य अपने निर्माण की प्रक्रिया से गुजर ही रहा था, तब बांग्ला में प्रचुर मात्रा में ऐतिहासिक कथा का सृजन हो चुका था। इन रचनाओं का हिंदी में अनुवाद या रूपांतरण हुआ अथवा इनकी प्रेरणा से मौलिक लेखन हुआ।
- प्राचीन कथाओं व पुराकथाओं के आधार पर साहित्य रचना एक लोकप्रिय कार्य बन गया। आजादी की भावना को व्यक्त करने के लिए यह एक अप्रत्यक्ष तरीका था। अंग्रेज सरकार के प्रतिबंधों की इस कथानक तक पहुँच मुश्किल थी।
- राम-रावण, कृष्ण-कंस आदि के द्वंद्व के जरिए अच्छाई की बुराई पर जीत, सत्य-असत्य के संघर्ष को व्यक्त कर देशवासियों को विदेशी सत्ता के प्रतिकार की चेतना से संबद्ध करने का प्रयास किया गया। मैथिलीशरण गुप्त का 'जयद्रथ-वध', 'भारत भारती', निराला की 'राम की शक्तिपूजा' आदि रचनाएँ इसी कोटि की थीं।
- भारत के प्राचीन काव्यों महाभारत, रामायण से लेकर उपनिषदों और पुराणों में ऐसी कथाओं, प्रसंगों की भरमार थी, जिनके आधार पर सत्य-असत्य के संघर्ष को, नवीन मानवता के निर्माण और स्वातंत्र्य-कामना को वर्णित किया जा सकता था।

COPYING@OJAANKIAS

- देशानुराग उस समय के कवियों के काव्य में प्रमुख स्वर बन गया। प्रसाद की कविताएँ- 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', 'हिमालय के आंगन में', माखनलाल चतुर्वेदी की 'पुष्प की अभिलाषा', प्रसाद की कहानी 'पुरस्कार', सुभद्राकुमारी चौहान की कविता 'वीरों का कैसा हो वसंत' आदि देश के प्रति अनुराग की सघन भावनाओं से रची गई।
- इन कविताओं में अंग्रेजी सत्ता का विरोध किए बिना अपने देश से प्रेम, उसके प्रति कर्तव्यभावना, उसके लिए उत्सर्ग हो जाने की कामना, उसके नवनिर्माण के लिए प्रतिबद्धता आदि भावों को प्रभावशाली शब्दों में गूंथा गया था।
- प्रकृति प्रेम साहित्य का एक प्रमुख विषय था- विशेष रूप से काव्य का। द्विवेदी युगीन काव्य में प्रकृति का वर्णन प्रमुख था तो छायावाद में यह वर्णन और सघन तथा संस्पर्शी हो उठा। अपने देश की प्रकृति से प्रेम इन रचनाओं में व्यक्त होकर पाठक के मन में देश की सजीव छवि निर्मित करता था, उसके हृदय को इस प्रकृति के आकर्षण से बांधकर गहनता देता था।
- रामनरेश त्रिपाठी के दो खंडकाव्य 'पथिक' और 'स्वप्न' उस जमाने में बहुत लोकप्रिय हुए। इसका मुख्य कारण यही था कि प्रकृति के प्रति प्रेम जीवन और देश के प्रति एक नए दृष्टिकोण में ढलकर इन काव्यों में उतरा था।
- हिमालय की उत्तुंग चोटियाँ, गंगा का प्रवाह, विध्य के वन, सह्याद्रि का विस्तार, सागर की हिल्लोल, मरुभूमि का निर्जन, अभेद्य वनों का गहन संसार, विशाल पारदर्शी झीलें अर्थात, उत्तरी भारत से लेकर दक्षिण समुद्र तक और बंगाल से लेकर गुजरात तक के भारत का समग्र भूगोल इस प्रकृति प्रेम से प्रेरित साहित्य में व्यक्त हुआ।
- मातृभूमि का एक साकार, मनोरम, उत्प्रेरित चित्र इसने अनेक पीढ़ियों के मानस पर अंकित कर दिया। देश अब एक राजनीतिक परिकल्पना भर न था, वह एक विराट भूगोल था, जिसकी रेखाएँ स्पष्ट थीं, जिसके पर्वत, नदियाँ, मैदान, गाँव-घर-नगर एक विहंगम दृश्यावली बनाते थे।
- देश की यह छवि साहित्य में इतने रूपों में व्यक्त हुई, इतने संवेदनशील और सौंदर्यपरक ढंग से व्यक्त हुई कि उसने शिक्षित वर्ग में मातृभूमि का एक नया आयाम रच दिया। भारत की प्रकृति साहित्य का संस्पर्श पाकर भारत के जनजीवन का और इस देश के सौंदर्य का एक यथार्थ चित्र बन गई।
- भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में हिंदी साहित्य का यह एक बड़ा योगदान था। यह उसकी अखिल भारतीय सोच का उदाहरण भी था।
- मानव प्रेम व विश्व प्रेम ये दो मुख्य बातें ऐसी थीं, जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के दृष्टिकोण को निर्मित करती थीं। भारत के महान स्वतंत्रता सेनानियों ने स्वयं को भारत की स्वतंत्रता तक सीमित नहीं रखा था। इसे मानव-प्रेम व विश्व-प्रेम का आधार दिया था। गाँधी, नेहरू, अरविंद, तिलक ही नहीं उस युग के सैकड़ों आजादी के नेताओं का संपूर्ण लेखन उपलब्ध है।
- यह लेखन सदियों तक यह साक्ष्य देता रहेगा कि दक्षिण एशिया के इस प्राचीन देश ने अपनी स्वतंत्रता के लिए ब्रिटिश उपनिवेशवाद से लड़ते हुए मानव-प्रेम और विश्व-प्रेम के महान विचारों का सृजन किया। यही कारण है कि भारतीय आजादी की लड़ाई दुनिया भर के देशों के लिए मुक्ति की प्रेरक बनी। इस लड़ाई की सबसे सशक्त अंतर्वस्तु इसका विश्वप्रेम और मानवतावाद ही है।
- स्वतंत्रता संग्राम के इस महान विचार से भारत भर का साहित्य अनुप्राणित हुआ। हिंदी साहित्य का स्वरूप इससे निर्धारित हुआ। वह मात्र देशप्रेम की चेतना का साहित्य न रह कर विश्व प्रेम व मानवतावाद के उद्गायन का साहित्य बातो राष्ट्रीय चेतना ने हिंदी साहित्य में सिर्फ देशप्रेम, अतीत प्रेम, समाज-सुधार आदि के भावों का ही समादेश नहीं किया उसने व्यक्ति स्वातंत्र्य को भी स्वर दिया।

वैयक्तिक मूल्य को साहित्य में वाणी मिली-

- वैयक्तिक मूल्य को इस साहित्य में वाणी मिली। वैयक्तिकता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य का समय के इस मोड़ पर हिंदी साहित्य में आने का अर्थ क्या था और इसके अभिलक्षण क्या थे?
- अंग्रेजों ने 1757 की प्लासी की लड़ाई के बाद धीरे-धीरे पूरे देश पर अपना अधिकार जमा लिया था। मुगलों के समय से चली आ रही उत्पादन, कृषि, कर आदि की व्यवस्था, शासनतंत्र, सत्ता का स्वरूप बदल गया। अंग्रेज़ जिस सभ्यता और संस्कृति के प्रतिनिधि थे, वह औद्योगिक क्रांति के बाद विकसित हुए पंजीवाद के चरण में थी।
- अंग्रेजों ने जो व्यवस्था भारत में औपनिवेशिक शोषण के लिए बनाई वह मुगलों के समय की सामंती-व्यवस्था से अपने स्वरूप और लक्ष्य दोनों में भिन्न थी। इसके बाद 1857 की क्रांति ने इस औपनिवेशिक व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन कर दिया।
- अंग्रेजों ने जो औपनिवेशिक तंत्र बनाया उसके साथ-साथ भारत में आधुनिकता का आगमन हुआ, 19वीं सदी बीतते बीतते राष्ट्रीय पूंजीवाद का विकास आरंभ हो चुका था।

COPYRIGHT OJAANKAS

- अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार तेज हुआ। 19वीं सदी में हुए विज्ञान और तकनीक के तेज विकास ने भारतीय समाज पर भी इस औपनिवेशिकरण के साथ कदम रखा। ब्रिटिश गुलामी ने भारत को एक अलग-थलग उपमहाद्वीप से विश्व-व्यवस्था से जोड़ दिया।

आधुनिकता का भारतीय समाज पर प्रभाव -

- यूरोपीय पुनर्जागरण, औद्योगिक क्रांति, आधुनिकता आदि का प्रभाव भारतीय समाज पर पड़ा। उपनिवेश ने यहाँ एक नए शिक्षित मध्यवर्ग को पैदा कर दिया था।
- जब हिंदी साहित्य के विकास को बीसवीं सदी के आरंभिक दो दशकों में गति मिली तब उपरोक्त समस्त परिवर्तनों का उस पर प्रभाव पड़ा। यह मध्यकाल से आधुनिकता में संक्रमण करते समाज का साहित्य था। भारतीय समाज वर्ण, जाति आदि के आधार पर गठित एक सामंती समाज था।
- उपरोक्त प्रक्रियाओं ने इसे बदल नहीं दिया, परन्तु समाज की इस संरचना पर दबाव पैदा किए और शिक्षित युवा वर्ग के मन में नवजीवन की आकांक्षाएँ पैदा की। इसी पृष्ठभूमि में वैयक्तिकता और व्यक्ति-स्वातंत्र्य के साहित्य का जन्म हुआ। छायावाद इसकी सबसे सशक्त अभिव्यक्ति बना।
- यह उस समाज का साहित्य था, जो अपने नवनिर्माण की आरंभिक लहरों से वाबस्ता था, जिसमें सामंती संबंधों की जकड़न से मुक्त होने की कामना ने जन्म ले लिया था। यह उस मन का साहित्य था जो स्त्री-पुरुष समता, स्त्री-स्वतंत्रता, स्त्री-पुरुष प्रेम की नवीन कल्पनाओं से आलोड़ित था।
- पंत का काव्य जहाँ एक ओर इन आधुनिक अनुभूतियों का कोमलतम स्वप्नजीवी रूप रच रहा था, वहीं निराला के काव्य में इसकी वेदना और दुःख पुकार रहे थे। वहीं प्रसाद के 'आँसू' में वैयक्तिक्ता का गहन लोक रचा गया। महादेवी की कविता ने इस स्वतत्रंता और समता की स्त्री आकांक्षा को प्रामाणिक स्वर दिया।
- यह वैयक्तिकता और वैयक्तिक स्वतंत्रता एक आधुनिक मूल्य थी। परम्परागत भारतीय समाज में परिवर्तन की आकांक्षा का स्वप्न इसका आधार था। इस आधार का प्रत्यक्ष संबंध उस देश से था, जो विदेशी दासता से मुक्त होने के लिए व्याकुल था, ताकि वह अपने भाग्य का नियंता स्वयं बन सके।
- विदेशी सत्ता द्वारा देश के संसाधनों का दोहन और शोषण रुके। देश में पहले ही आरंभ हो चुके पूंजीवादी विकास को गति मिले। यह गति देश में नई संस्थाओं का निर्माण करे। समाज में अवसरों की बराबरी हो।

स्त्री-शिक्षा और आधुनिकता-

- स्त्री-शिक्षा और आधुनिकता की जो प्रक्रिया ब्रिटिश मशीनरी को चलाने की प्रक्रिया में सीमित रूप में उपजी थी, उसे गति मिले, उसकी गुणवत्ता में वृद्धि हो। इन परिवर्तनों से आजाद देश में व्यक्ति का स्वतंत्र विकास हो। ये सारे स्वप्न परस्पर गुथे हुए थे।
- आजादी कोई अमूर्त स्वप्न नहीं था। न ही इसका संबंध भारत से गोरों के चले जाने भर से था। इसका संबंध भारत के लोगों के जीवन में उन परिवर्तनों से था, जो उन्हें वर्तमान विश्व में एक बेहतर देश और समाज का नागरिक बना सके।
- जयशंकर प्रसाद, निराला, महादेवी, पंत, माखन लाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा नवीन, प्रेमचंद फिर इनके तत्काल बाद आई नई पीढ़ी के रचनाकार, अज्ञेय, यशपाल, दिनकर, बच्चन, नरेंद्र शर्मा आदि के साहित्य में जहाँ एक ओर राजनीतिक स्वतंत्रता का स्वर था तो दूसरी ओर इस स्वतंत्रता को परिभाषित और व्याख्यायित करने वाले जीवन के विस्तृत और गहरे चित्र थे।
- प्रेमचंद ने औपनिवेशिक शासन और ब्रिटिश सत्ता द्वारा पैदा की गई और संरक्षित जमींदारी प्रथा और महाजनी व्यवस्था में पिसते किसानों के जीवन का मर्मस्पर्शी और अत्यंत विस्तृत संसार रचा।
- यह स्वतंत्रता अनिवार्यतः समाजवाद के स्वप्न से संबद्ध थी। समाजवाद का विचार भारतीय स्वातंत्र्य संघर्ष में धीरे-धीरे विकसित हुआ। सुभाष चन्द्र बोस, आचार्य नरेंद्र देव आदि नेताओं ने समाजवाद को आज़ाद भारत के स्वप्न में शामिल किया।

COPYING@OJAANKIAS

क्रांतिकारी आंदोलन-

- क्रांतिकारी आंदोलन भी 1925 के बाद एक नए चरण में पहुँच चुका था। उसके पहले मास्टर सूर्यसेन, बाघा जतीन, वासुदेव बलवंत फड़के, खुदीराम बोस जैसे सैकड़ों देशभक्तों ने आज़ादी की लड़ाई के क्रांतिकारी पक्ष को अपने प्राणों की आहुति से सींचा था।
- यह भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, भगवतीचरण वोहरा की पीढ़ी थी। इस मंथन से यह निकला कि सशस्त्र क्रांतिकारी संघर्ष का लक्ष्य भारत में आजादी के बाद समाजवादी व्यवस्था का निर्माण है। इसी कारण पुनर्गठित क्रांतिकारी दल का नया नाम 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातांत्रिक सेना' रखा गया। इस सबका प्रभाव हिंदी साहित्य पर पड़ा। बल्कि हिंदी साहित्य इस मंथन से ही अब रूपांतरित होना शुरू हुआ।

छायावाद की वैयक्तिकता-

- छायावाद की वैयक्तिकता समाजवाद के स्वप्न में बदल कर 1936 के बाद प्रगतिशील साहित्य के रूप में विकसित होना शुरू हुई। 1947 में आजादी मिलने के पूर्व के दस वर्ष इस नई धारा के साहित्य के विकास के थे।
- राष्ट्रीय आंदोलन की चेतना में बीसवीं सदी के आरंभिक 50 वर्षों में जो जो परिवर्तन हुए, उन परिवर्तनों का स्रोत समाज और इतिहास की गति थी, इस गति से पैदा हुई सामूहिक आकांक्षा और सामूहिक स्वप्न थे। हिंदी साहित्य इसी गति, आकांक्षा और स्वप्न का शब्दरूप था।

स्वाधीनता आन्दोलन और राष्ट्रवाद

- भारतीय इतिहास में 1857 से 1947 के बीच हुए स्वाधीनता आंदोलन का महत्वपूर्ण स्थान है। यह आंदोलन सिर्फ भारतीय जनता द्वारा किए गए संघर्ष का प्रतीक ही नहीं है, बल्कि, यह 1857 की क्रांति और उसके बाद के संघर्ष में भारतीय जनता की साझी हिस्सेदारी और देश के लिए कुछ कर गुजरनेवाली चेतना का कभी न समाप्त होनेवाला एक जीवंत राष्ट्रवादी अध्याय भी है।
- दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि आधुनिक भारत की पूरी परिकल्पना विकसित करने में इस दौर की एक बड़ी भूमिका रही है। चाहे वह साहित्य हो या इतिहास, भारत की राजनीति हो या भूगोल।
- किसी भी राष्ट्र और उसके वर्तमान संदर्भो को समझने के लिए इतिहास के साथ ही लोक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में मौजूद उन स्रोतों को भी खंगालने की ज़रूरत पड़ती है, जिन्हें कई बार इतिहासकार और अध्येता अमहत्वपूर्ण मानकर छोड़ देते हैं।
- यद्यपि यह एक महत्वपूर्ण बात है कि यूरोप में विकसित राष्ट्रीयता नस्लीय, भाषाई, शासकीय, सामंतवादी-पूंजीवादी धारा की तरफ इशारा करती है; वही एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमेरिका आदि देशों में उदित राष्ट्रीयता लोक संस्कृति, साहित्य, कला आदि जन मूल्यों के सहारे राष्ट्रीय मुक्ति या राष्ट्रीय उत्थान के धारा का निर्माण की तरफ।

1857 के बाद दासता से मुक्ति की चेतना-

- भारत में भी 1857 के बाद राष्ट्रवाद की जो धारा निर्मित हुई उसके निर्माण में दासता से मुक्ति की इस चेतना को देखा जा सकता है तथा जिसकी अनेक जटिलताएँ स्वाधीनता आंदोलन के दौरान दिखलाई देती हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि भारतीय राष्ट्रवाद की निर्मित, ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष करते हुए भारत के वृहत्तर सामाजिक समूहों की चेतना में मौजूद राष्ट्र-मुक्ति की आकांक्षा लिए निर्मित और विकसित होता है।

भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण के कारक-

- भारतीय राष्ट्रवाद के निर्माण में 1857 का पहला स्वतंत्रता संघर्ष, 1905 में हुआ बंगाल का विभाजन, 1917 में गाँधी द्वारा चंपारण के किसानों के लिए किया गया संघर्ष, भगत सिंह एवं सुभाषचंद्र बोस जैसे सेनानियों के समाजवादी-क्रांतिकारी आंदोलनों के साथ ही 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन की बड़ी भूमिका रही है तथा इन ऐतिहासिक परिघटनाओं से आधुनिक एवं समकालीन भारत की पहचान बनती है।
- गाँधी की दृष्टि में ग्रामीण समाज इस जो स्वाधीनता आंदोलन में उनके साथ हमेशा खड़ा रहता है। यह समाज पूरी तरह से अंग्रेजी राज के खिलाफ है तथा गाँधी एवं अन्य का वैकल्पिक आधार था।

एक नए भारत की परिकल्पना-

- राष्ट्रवादी नेताओं के साथ मिलकर एक नए भारत की परिकल्पना को सामने रखता है; जो गाँधी के सपनों का भारत भी है और अंबेडकर के वर्ण-जाति से परे हिंदुस्तान भी; भगत सिंह का प्रगतिशील भारत भी है और सुभाषचंद्र बोस का स्वाभिमानी भारत भी।
- मुख्य बात है, यह राष्ट्रीय समाज देश से प्यार करता है और भारत को गाँवों का देश मानता है जहाँ के लोग अपनी मातृभूमि से प्यार करते हैं। खेत-खलिहान से प्यार करते हैं और जहाँ सागर की लहरें, बहती हवाएँ, नदियों के जल और चहचहाते पक्षी देश का गीत गाते हैं और जिसे शब्द देते हैं, हमारे कवि, लेखक और उनकी साहित्य की दुनिया।

वृहत्तर भारत की दृष्टि -

- कहा जा सकता है कि भारतीय इतिहास का यह वह समय है जिसमें खंड-खंड में बँटी देशीय चेतना को वृहत्तर भारत से जोड़कर देखने की दृष्टि विकसित होती है, चाहे वह प्रकृति हो या समाज; साहित्य हो या संस्कृति; कला हो या दर्शन; जड़ हो या चेतन; ज्ञान हो या चिंतन। पर, ये संपूर्णता में देश की एक राष्ट्रवादी छवि गढ़ते हैं।
- यद्यपि जयशंकर प्रसाद की कविता में निहित ये ध्वनियाँ भारतीय राष्ट्र की उस पारम्परिक राष्ट्रीयता की तरफ संकेत करती है जिसे भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा आदि जैसे लेखक राष्ट्रीय साहित्य से जोड़कर संबोधित करते हैं।
- पर यह भी सच है कि ये निर्मितियाँ ही भारतीय जनता को ब्रिटिश राज के खिलाफ मानसिक रूप से तैयार करते हुए खड़ा होने के लिए प्रेरित करती हैं तथा भारतीय समाज में राष्ट्र (वाद) का एक ऐतिहासिक रूप रचती हैं तथा जिसके लिए देश और देश के लोग ही सब कुछ हैं।
- यह एक जटिल प्रश्न है, पर जिस तरह हिन्दी के लेखकों में प्रेमचंद, रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी आदि इसे जातीय संदर्भों से जोड़कर देखते हैं तथा बांग्ला के रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे लेखक एक परिकल्पित चेतना के रूप में मानते हैं, वह महत्वपूर्ण है।
- इनमें टैगोर को उस चेतना में भारतीय और एशिया महादेश की सभ्यता और संस्कृतियों का गहरा बोध दिखाई देता है जिसे वे अपने गोरा जैसे उपन्यासों और गीतांजलि जैसी कृतियों के जरिए समझने की कोशिश करते हैं तो प्रेमचंद को इसमें ग्रामीण सभ्यता की वे प्रछन्न धाराएँ दिखाई देती है जिसे वे कृषि संस्कृति से जोड़कर समझने कि कोशिश करते हैं।
- 1857 से 1947 के बीच की राष्ट्रवादी निर्मितियों को समझने में लोक स्मृतियाँ और उन स्मृतियों में दर्ज लोक सृजन के विविध पाठ मदद करते हैं। उदाहरण के लिए, राष्ट्रवाद के इस स्वरूप और इसकी ऐतिहासिक चेतना को भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास के निम्न काल-खंड में बाँटकर देखने पर भारतीय राष्ट्रवाद की संरचना को समझने में थोड़ी मदद मिलती है।
- जैसे, एक 1857 का संघर्ष और उसकी परिणितियाँ; दो 1873 और भारतीय साहित्य, प्रेस तथा पत्रकारिता; 1885, काँग्रेस का उदय तथा एक नए बौद्धिक वर्ग का उदय; 1905, बंगाल का विभाजन, स्वाधीनता आंदोलन के उभार; 1917,गाँधी, अंबेडकर और स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय धारा; 1942, भारत छोड़ो आदोलन, क्रांतिकारी राष्ट्रवाद का मुक्ति संदर्भ।
- इस बीच साहित्य की दुनिया में 1936 एक अलग अर्थ लेकर आता है, जब लखनऊ में प्रसिद्ध लेखक प्रेमचंद की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ के गठन के बाद आर्थिक रूप से उत्पीड़ित एवं सामाजिक रूप से शोषित तबका साहित्य के केंद्र में खड़ा होता है। इसे शोषित और वंचित तबके के राष्ट्रवाद के रूप में देखा जा सकता है, जिसकी तरफ प्रेमचंद 1936 में प्रकाशित उपन्यास गोदान में संकेत करते हैं।

गोदान किसान राष्ट्रवाद का एक बड़ा उदाहरण-

- गोदान किसान राष्ट्रवाद का एक बड़ा उदाहरण है जिसमें किसान और मजदूर पात्र होरी और गोबर के बहाने प्रेमचंद ने वंचित एवं शोषित समाज के लिए राष्ट्रवाद के मायने समझने की कोशिश की है। इन संदर्भो और इन पर केंद्रित साहित्यिक पाठों के आधार पर राष्ट्रवाद और समकालीन भारत को समझना एक महत्वपूर्ण कार्य होगा।

1857 का संघर्ष, उसकी परिणितियाँ और उभरते भारतीय राष्ट्रवाद के मायने

- भारतीय इतिहास में 1857 का संघर्ष एक बड़ी परिघटना के रूप में दर्ज है। यद्यपि इस संघर्ष में भारतीय सेनानियों की पराजय हुई, पर इसने यह समझने में मदद की कि भारत की बुनियाद किन वैचारिक और सामाजिक धरातल पर टिकी हुई है।
- इसने न केवल आधुनिकता का दरवाजा खोला, बल्कि 1857 में देश की जनता और उसमें सभी समुदायों द्वारा उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ किए गए संघर्ष ने सामाजिक विकास की प्रक्रिया को समझने में भावनात्मक स्तर पर मदद किया तथा
- 1857 के संघर्ष ने सभी समूहों की भागीदारी ने सांझी संस्कृति की धर्मनिरपेक्ष भारत की नींव निर्मित हुई तथा जिसे 1947 के बाद पूरी दुनिया ने एशिया महादेश में धर्मनिरपेक्ष भारत की एक नई धमक के रूप में महसूस किया।
- संभवत: 1857 का संघर्ष नहीं होता तो मध्यकाल में बनी और विकसित हुई सांझी संस्कृति की विरासत को उतनी ताक़त नहीं मिलती जिसके कारण बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमान सहित अन्य समुदायों और समूहों के लोगों ने मिलकर ईस्ट इंडिया कंपनी की दमनकारी नीतियों के खिलाफ संघर्ष किया और जीतते-हारते क्रांति के इतिहास में अपना नाम दर्ज किया।

देशीय जनता का संघर्ष-

- यह देशीय जनता का, एक ताक़तवर सत्ता के खिलाफ किया गया बड़ा और भारी संघर्ष था। दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह ज़फ़र, कानपुर के नाना साहब, बैरकपुर में मंगल पांडे, जगदीशपुर के कुंवर सिंह, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, लखनऊ की बेगम हज़रत महल, कर्नाटक के हलगली के वेडर, अवध के राजा बेनीमाधव, तब के बंगाल और अब के झारखंड के सीदो और कान्हु, आंध्र प्रदेश के सुब्बा रेड्डी, पूर्वी भारत की रानी गाइडिल्यू आदि सेनानियों सहित बड़ी संख्या में किसानों और मजदूरों ने ताकतवर ईस्ट इंडिया कम्पनी और अंग्रेज सेना के खिलाफ संघर्ष किया।

किसान केंद्रित राष्ट्रवाद की नींव-

- इस युद्ध ने एक तरफ जहाँ किसान केंद्रित राष्ट्रवाद की नींव रखीं, वहीं दूसरी तरफ सांझी संस्कृति की एक मिसाल भी कायम की तथा भविष्य के भारत की एक धर्मनिरपेक्ष छवि भी बनाई।
- इसका असर हुआ और 1857 के बाद ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने भारत की शासन व्यवस्था चलाने के लिए 1858 में कई ऐक्ट बनाकर जो नीतिगत ढांचा तैयार किया, उसमें धर्म संबंधी निर्देशों के साथ-साथ अनेक नियमों-अधिनियमों की बुनियाद भी पड़ी तथा जिसका प्रभाव आज भी संघीय ढाँचे में देखा जा सकता है जिसके खिलाफ 1890 के बाद; खासकर 1917 के बाद गाँधी के साथ जनता ने बड़ा मोर्चा खोला।

1873 और भारतीय साहित्य, प्रेस तथा पत्रकारिता

- वे नियम-अधिनियम क्या थे जिन्होंने 1857, विशेषकर 1873 के बाद के भारत को प्रभावित करना शुरू किया तथा जिसकी अनुगूंज साहित्य और पत्रकारिता की दुनिया में दिखलाई देती है तथा जिसके प्रतिरोध में एक बौद्धिक राष्ट्रवाद की चेतना उत्तर भारत के हिन्दी और बांग्ला भाषी समाज में दिखलाई देती हैं? उनमें 1858 में निर्मित दो ऐक्ट महत्वपूर्ण हैं: एक प्रेस ऐक्ट और दूसरा आर्स ऐक्ट।
- इन ऐक्ट का ही प्रभाव था कि भारत में 1878 से 1947 तक अनेक रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाएँ और किताबें ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित होती है जिनमें बालकृष्ण भट्ट की हिन्दी प्रदीप, प्रेमचंद कृत सोजे वतन, सखाराम गणेश देउसकर कृत देशेर कथा आदि। इन रचनाओं में ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रतिरोध की गहरी चेतना देखी जा सकती है। इन पाठों की सबसे बड़ी भूमिका यह थी कि इन्होंने ब्रिटिश राज के खिलाफ आम जनता में असंतोष का भाव पैदा किया।
- हिन्दी लेखक भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने इसमें बड़ी भूमिका निभाई। यह भी महत्वपूर्ण है कि उस दौर के हिन्दी के बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र सहित अनेक लेखकों ने ऐसे मिथ के ज़रिए भारतीयता को समझने की कोशिश की है जिसे कई बार कुछ टिप्पणीकार धर्म विशेष से जोड़कर देखने लगते हैं।

1885, काँग्रेस का उदय तथा एक नए बौद्धिक वर्ग का उदय

- दरअसल, महेश नारायण जैसे कवि या भारतेन्दु हरिशचंद्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि जैसे लेखक भारतीय राष्ट्रवाद की जिस धारा का निर्माण किया, उसका एक कारण 1885 में बनी काँग्रेस के साथ वह अंग्रेजी शिक्षा भी है, जो धीरे-धीरे प्रतिकार स्वरूप भारतीयों के अन्दर मातृभूमि और निज भाषा के प्रति एक गहरा लगाव विकसित करती है।

- काँग्रेस के कारण भरतीय बौद्धिक वर्ग को एक स्पेस भी मिलता है जिसका असर यह होता है कि अंग्रेजी शिक्षा ग्रहण कर यह तबका मध्य-वर्ग के रूप में स्वाधीनता आंदोलन में एक बड़ी भूमिका निभाता है जिसकी तरफ अमृतलाल नागर करवट और पीढ़ियाँ जैसे उपन्यासों में संकेत करते हैं।
- इसके साथ ही, सावित्री बाई फुले और ज्योतिबा फुले आदि के कारण महाराष्ट्र में उभरा वह दलित नवजागरण भी है जिसका एक वृहत्तर रूप 1920 के बाद भारतीय स्वाधीनता और सामाजिक आंदोलनों में अंबेडकर के आने के बाद दिखलाई पड़ता है। 1890 के आसपास हिन्दी में दलित और स्त्री सवाल पर जिस गंभीरता के साथ हिन्दी लेखक राधामोहन गोकुल कार्य करते हैं, वह महत्वपूर्ण है।
- 1910 में प्रकाशित उनकी एक रचना अंग्रेज़ डाकू ब्रिटिश राज द्वारा प्रतिबंधित भी होती है। पर, हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनकी किसी रचना का उल्लेख नहीं मिलना, दुर्भाग्यपूर्ण है।
- हिन्दी के आलोचकों में रामविलास शर्मा और कर्मेंदु शिशिर उनकी चर्चा करते हैं तथा उसे हिन्दी नवजागरण का एक महत्वपूर्ण अंश मानते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि ये लेखक ब्रिटिश राज की नीतियों को समझते हुए अपनी रचनाओं के माध्यम से जनता के अन्दर देश प्रेम की गहरी चेतना का विकास करते हैं।
- यह भी कहा जा सकता है कि ये लेखक बौद्धिक स्तर पर पूरे देश में ब्रिटिश राज के खिलाफ प्रतिरोध की जिस राष्ट्रवादी सामूहिक चेतना का निर्माण करते हैं, उसकी उपस्थिति बाद के भारतीय साहित्य में गहराई के साथ दिखलाई पड़ती है।

1905, बंगाल का विभाजन, स्वाधीनता आंदोलन के उभार

- टैगोर गीतांजलि सहित अन्य रचनाओं में भारतीय राष्ट्र की जिन छवियों का निर्माण करते हैं, उसका गहरा असर भारत सहित पूरी दुनिया पर पड़ता है।
- टैगोर द्वारा गीतांजलि में रचित यह गीत उस भारतीय राष्ट्रवाद की तरफ संकेत करता है जिसे किसान केंद्रित एक सांस्कृतिक राष्ट्रवाद कहा जा सकता है तथा जिसका विकास 1930 के बाद हिन्दी के प्रेमचंद जैसे लेखकों की रचनाओं में दिखलाई पड़ता है।
- यह कृषक समाज का जमीन से अलग होने और उसके जाने से विचलित होने का दर्द है जो राष्ट्रवाद के नए रूप से हमारा परिचय कराता है। टैगोर तो जिस मार्मिकता के साथ बंगाल के दु:ख को गीतांजलि में प्रकट करते हैं, वह बहुत ही मार्मिक है।
- भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का यह वही आख्यान है जिसे जन समाज किसान राष्ट्रवाद के साथ रचता है तथा जिसकी पहचान राष्ट्रवादी नेताओं में गाँधी सबसे पहले करते हैं। पर उसकी नींव तो 1905 में ही पड़ गई थी, जब ब्रिटिश राज के खिलाफ बंगाल समेत देश की जनता अपना संघर्ष तेज करती है।
- इसी का परिणाम है कि बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले आदि जैसे बड़े नेता 1905 के बाद राष्ट्र के प्रति एक नई चेतना लेकर आंदोलन में आते हैं जिसे 1917 में गाँधी के आने के बाद काफी बल मिलता है।

1917, गाँधी, अंबेडकर और स्वाधीनता आंदोलन की राष्ट्रीय धारा

- दरअसल, पहले विश्व युद्ध के बाद, अफ्रीका से लौटते ही गाँधी 1917 में चम्पारण जाते हैं, और वहाँ नील की खेती करने वाले किसानों से मिलते हैं। उनका चम्पारण के किसानों से मिलना एक बड़ी राष्ट्रीय परिघटना है। इसके बाद गाँधी पूरे भारत की यात्राएँ करते हैं जिसका ग्रामीण समाज पर गहरा असर पड़ता है।
- वहाँ गाँधी को एक नए भारत का दर्शन होता है, जहाँ की संस्कृति, सभ्यता और आर्थिक स्वावलम्बन के उन्हें अनेक स्रोत दिखलाई पड़ते हैं।
- गाँधी उससे प्रभावित होते हैं, पर किसानों की दरिद्रता और बेबसी उन्हें आर्थिक राष्ट्रवाद की तरफ मोड़ती है। पर, उन्हें सबसे अधिक प्रभावित तथा विचलित करता है- किसानों के ऊपर चढ़ा कर्ज और लगान; साथ ही, अंग्रेजों द्वारा कराई जा रही अनचाही नील, अफीम, गांजा आदि की खेती और अनेक तरह के आर्थिक संकटों से जूझते ग्रामीण किसानों की बदहाली तथा उनके मरते हुए सपने।
- भोजपुरी के एक अज्ञात कवि ने भी गाँधी का जनता पर पड़े इसी प्रकार के प्रभाव का उल्लेख किया है जिसकी चर्चा बद्रीनारायण, पंकज राग, हितेंद्र पटेल, रश्मि चौधरी, दीपक कुमार राय आदि जैसे नई पीढ़ी के इतिहासकार भी करते हैं- मान गाँधी के बचनवा दुखवा हो जईहे सपनवा/तन पे उतार कपड़ा विदेशी, खद्दर के कइल धरनवा। अर्थात, गाँधी का लोक समाज पर प्रभाव इतना गहरा है कि लोगों को लगता है कि खद्दर और चरखा के ज़रिये गाँधी ब्रितानिया सरकार की अर्थव्यवस्था की चूलें हिला देंगे और अँगरेज़ भारत छोड़कर भाग जायेंगे।

- प्रसिद्ध हिन्दी कथाकार भीष्म साहनी ने भी लिखा है कि गाँधी जी के स्वाधीनता संग्राम की सारी परिकल्पना ही नई और अनूठी थी। उनका विश्वास शस्त्रास्त्रों में नहीं था। वह अहिंसात्मक ढंग से लड़ाई लड़ने के हक में थे। गाँधी जी का विश्वास आत्मबल में था- 'एक ओर जहाँ वे ब्रिटिश सरकार के कानून भी नहीं मानना चाहते थे और उनका डटकर विरोध करते थे, दूसरी ओर वे किसी प्रकार की हिंसा का प्रयोग भी नहीं करना चाहते थे।
- यह एक परिप्रेक्ष्य है, गाँधी का जो उनके अन्दर, सपनों का एक अलग भारत निर्मित करता है। कहना न होगा कि इन बातों का गहरा असर लोगों पर दिखलाई पड़ता है।
- धीरे-धीरे भारतीय बौद्धिक जगत और आम जनता को 1918 से 1942 के अंग्रेजी राज के खिलाफ सत्याग्रह, अहिंसा, स्वराज, चरखा, समाजवाद, उग्र राष्ट्रवाद आदि और अंत में 1942 में करो या मरो जैसे आन्दोलनकारी शब्द मिलते हैं।
- इस बीच साहित्य से लेकर राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में गाँधी और अंबेडकर सहित भगत सिंह, जिन्ना, पेरियार, सुभाषचंद्र बोस आदि जिस भारत की परिकल्पना लेकर स्वाधीनता आंदोलन में आते हैं, वह एक नया राष्ट्रवादी भारत है और यह राष्ट्रवादी भारत ब्रिटिश साम्राज्यवाद सहित, पारम्परिक भारतीय समाज की जड़ स्थापनाओं की भी चूलें हिलाना शुरू कर देता हैं।
- यद्यपि इस बीच स्वाधीनता आंदोलन बाबा साहब अंबेडकर, भगत सिंह, सुभाषचंद्र बोस आदि एक बड़ी भूमिका निभाते हैं; पर, सन '42 का आंदोलन भारतीय स्वाधीनता आंदोलन में प्रतिरोध की एक नई चेतना लेकर आता है।

1857 से 1947 के बीच भारतीय राष्ट्रवाद-

- वास्तव में 1857 से 1947 के बीच भारतीय राष्ट्रवाद का जो रूप दिखलाई पड़ता है, वह आम जनता के उस राष्ट्रवाद की तरफ संकेत करता है जिसके केंद्र में राष्ट्र-मुक्ति के अलावा और कुछ नहीं है। इस राष्ट्र-मुक्ति का पूरा आधार जनता के व्यापक हित को लेकर निर्मित हुआ है तथा जिसके केंद्र में व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और सामाजिक न्याय के साथ ही राष्ट्र का विकास एक महत्वपूर्ण लक्ष्य है।
- हिन्दी साहित्य अथवा लोक स्मृतियों में दर्ज रचनाएँ भी राजनीतिक मुक्ति की बातें सबसे अधिक करती हैं तथा उसके समानांतर सामाजिक मुक्ति के प्रश्न को तल्खी के साथ उठाती है जिसमें स्त्री तथा दलित मुक्ति का सवाल एक बड़े सवाल के रूप में आता है।
- यद्यपि भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्रवाद की जो छवियाँ निर्मित होती है, उस पर इतिहासकारों से लेकर अनेक क्षेत्र के बुद्धिजीवियों ने गहन विचार-विमर्श किया है तथा इसी कारण भारतीय इतिहास का यह दौर भारतीय राष्ट्र की एक बुनियाद के रूप में देखा जाता है तथा जिसके ऊपर 1947 के बाद का भारत खड़ा है।
- यह भारत उतना ही लोकतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष है जितना कि दुनिया के पटल पर होना चाहिए तथा जिसकी सामूहिक चेतना भारतीय ज्ञान और चिंतन की परम्परा पर केंद्रित है। यह एक महत्वपूर्ण बात है जो आज आजादी के पिचहतरवें वर्ष में वैश्विक पटल पर नए तरीके से चिंतन की माँग करती है।

समकालीन स्त्री-लेखन

- समाज सुधारकों का मानना था कि आम जनता को यदि शिक्षित करना है तो देशी भाषाएँ ही इसका माध्यम बन सकती हैं। उन्नीसवीं सदी के इस दौर की राजनीति में 'स्त्री-प्रश्न' उभार पर था और राजनीति और जेण्डर दोनों परस्पर असम्बद्ध नहीं, बल्कि कई स्तरों पर सम्बद्ध थे। पश्चिमी रहन-सहन के साथ औपनिवेशिक जीवन-शैली के संघर्ष और स्त्री-प्रश्न पर वैचारिक अंतराल ने रचनाकारों को टकराने-जूझने का अवसर दिया।

एक नव्य- पितृसत्तात्मक व्यवस्था-

- ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन-व्यवस्था ने एक नव्य- पितृसत्तात्मक व्यवस्था को जन्म दिया। इस व्यवस्था ने शिक्षा द्वारा नयी स्त्री-छवि का आदर्श सामने रखा। पार्थ चटर्जी के मुताबिक "इस नयी स्त्री को अपने ही समाज के पुरुषों और पश्चिमी स्त्री से भिन्न होना था।
- उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तक आते-आते भारतीय बौद्धिकों को यह चिंता भी थी कि स्त्रियों को जैसी दरकार है वैसी शिक्षा मिल नहीं पा रही है। इस मुद्दे पर परस्पर असहमति भी थी। मसलन बंगीय महिला की भूमिका में तारकनाथ विश्वास ने लिखा, "ऐसी बहुत कम पुस्तकें आयी हैं, जो स्त्रियों के पढ़ने लायक है, या जिन्हें पति अपनी पत्नी को पढ़ने के लिए दे सकें।"

- रमाबाई ने हिन्दू स्त्री का जीवन में अमेरिकी पाठकों का आह्वान करते हुए लिखा- "आप सभी जो इस पुस्तक को पढ़ रहे हैं, मेरे देश की स्त्रियों के बारे में सोचिए और जागिए, एक सामान्य भाव से उन्हें आजीवन दासता एवं नारकीय दु:खों से मुक्त करने के लिए आगे बढ़िए।
- स्त्री के आत्मकथ्य का विश्लेषण उसके समाज, समुदाय, पीड़ा, चोट, लिंग भेद के अनुभव मनोसामाजिकी और भाषा भंगिमाओं को सामने लाने में मदद करता है।
- भारत में, 1920 के आसपास आभिजात्य घरानों की मुसलमान स्त्रियाँ अंग्रेजी पढ़ने की ओर उन्मुख हुईं। शिक्षा के इस नए दौर ने पढ़ी-लिखी स्त्रियों का एक ऐसा वर्ग बनाया जिसमें मुहम्मदी बेगम, नज़र सज्जाद हैदर, अब्बासी बेगम जैसी स्त्रियाँ को देखा जा सकता है, जिन्होंने रिसालों में लिखना और छपना शुरू कर दिया था।

समाज के घटनाचक्रों के साथ-साथ निजी अनुभवों की भी अभिव्यक्ति-

- स्त्री रचनाकारों के अब तक उपेक्षित गद्य, पत्रों, डायरियों, कविताओं यात्रा-वृत्तांतों को देखकर पता चलता है कि वे अपने समय और समाज के घटनाचक्रों के साथ-साथ निजी अनुभवों को भी अभिव्यक्त कर रही थीं।
- आबिदा सुल्तान की दादी भोपाल की बेगम सुल्तानजहाँ की आत्मकथा तीन भागों में उर्दू और अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई, जो औपनिवेशिक सत्ता, राष्ट्रवादी विचारधारा के उदय और सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों के समानान्तर और परस्पर प्रतिच्छेदी धाराओं से टकराती दिखती है। सुल्तानजहाँ बेगम 1901-1926 के बीच भोपाल रियासत की सुल्तान रहीं।
- अल हिजाब में उन्होंने मुसलमान स्त्रियों को पर्दे और हिजाब में रहने की नसीहत दी और नवजागरण के अन्य समाजसुधारकों से अपने-आपको पर्दे के मसले पर अलगाने की कोशिश की, साथ ही पाश्चात्य सभ्यता की तुलना में उन्होंने इस्लामिक रीति-रिवाजों को प्रस्थापित किया।
- देश को स्वतंत्रता तो मिली लेकिन विभाजन की घटना ने स्त्री-पुरुष दोनों को प्रभावित किया। देश-विभाजन, पुनर्स्थापन, धर्म और सांप्रदायिकता के आधार पर नागरिकों के विभाजन के सबके अपने पाठ थे।

अपनी-अपनी चुनौतियाँ और संघर्ष-

- विभाजन की घटना ने राजनीतिक परिदृश्य पर जो परिवर्तन उपस्थित किए उनका भारत और पाकिस्तान की स्त्रियों पर गहरा प्रभाव पड़ा, इस दौर में आत्मकथा लेखन में अप्रत्याशित तेजी देखी गयी। सबके पास अपनी-अपनी चुनौतियाँ और संघर्ष थे।
- 'गुब्बार-ए-कारवां' बेगम अनीस किदवई (1906-1982) ने लिखी, जो अधूरी ही मकतब-ए-जामिया, दिल्ली से 1983 में मूल उर्दू में छपी। उत्तर प्रदेश के बाराबंकी की रहने वाली अनीस ने 'आजादी की छाँव में' (1949) शीर्षक संस्मरण जिसमें अनीस किदवई भारत-पाकिस्तान विभाजन के दौरान हुए दंगों और शरणार्थियों की समस्या का आँखों देखा ब्यौरा प्रस्तुत करती हैं।
- राजनीति में सक्रिय बेगम कुदसिया एजाज़ रसूल (जन्म 1908) की आत्मकथा 'फ्रॉम पर्दा टू पार्लियामेंट' ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता के अनुभव उनकी किताब में दर्ज हैं।
- कुदसिया ने 1937 से 1940 तक काउन्सिल के उपप्रधान के तौर पर काम किया। वह पहली भारतीय मुस्लिम स्त्री थीं जो इतने ऊँचे पद तक पहुँचने में कामयाब हुईं। उनकी आत्मकथा इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि पितृसत्तात्मक समाज में नेतृत्वकारी क्षमता वाली स्त्रियों के अनुभव और क्षमता का उपयोग का प्रतिशत बहुत कम है।

स्वतंत्रता के बाद की स्त्री आत्मकथाएँ-

- स्वतंत्रता के बाद की स्त्री आत्मकथाएँ इसके साहित्यिक साक्ष्यों के रूप में देखी जा सकती हैं, जो यह बताती हैं कि समाज का स्त्रियों को और स्त्रियों का समाज को देखने का नज़रिया कैसा है, साथ ही स्त्री के आसपास घटने वाले सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों के प्रति स्त्रियाँ क्या सोचती हैं।
- पाकिस्तान चली गयी औरतों के आत्मकथ्यों में, सामाजिक परिवर्तनों की भूमिका और स्त्री मुक्ति की इच्छा को देखा जा सकता है। एक तरफ ये स्वयं को मुक्त करने की दिशा में प्रयासरत दिखाई देती हैं दसरी तरफ समाज में अपनी पहचान बनाने की कोशिश करती है।
- इन आत्मानुभवों को पढने से इन स्त्रियों की टकराहटों-चाहे वे समाज के साथ हों, परिवार के साथ हों या स्वयं के साथ हों, के साथ-साथ व्यक्तित्व के अंतर्विरोधों की भी परतें खुलती हैं।

- वे कौन से कारण हैं कि कोई स्त्री आत्मकथा जैसी विधा का चुनाव करती है, जो भी उस आत्मकथ्य को पढ़ता है वह साहित्य-सजग मुद्रा को सराहे बिना नहीं रह सकता। ऐसा टेक्स्ट जो निजी और सार्वजनिक के बीच मध्यस्थता कर सके और साथ ही स्वानुभवों को भी व्यक्त कर सकें।
- जहाँ प्रारम्भ में ये स्त्रियाँ अभिव्यक्ति के लिए व्याकुल दिखती हैं, साक्षर बनने के लिए, छपने की जद्दोजहद करती दिखाई देती हैं वहीं नब्बे के दशक के बाद उनमें बदलाव को रेखांकित किया जा सकता है, अब वे शिक्षा प्राप्त कर चुकी हैं।
- देश-विभाजन, विस्थापन ने उन्हें अनुभव-परिपक्व बना दिया है, इसलिए अब वे अपने गद्य में पात्रों को रचती हैं। इन स्त्रियों का आत्मकथा विधा में लेखन राष्ट्र-आख्यान से स्वयं को जोड़ने और इतिहास की धारा में स्वयं को जीवंत ऐतिहासिक चरित्रों के रूप में पहचाने जाने के प्रयास के रूप में देखा जाना चाहिए।

COPYING@OJAANKIAS

OJAANK IAS ACADEMY

Our Selected Students in IAS 2020

Congratulations to Our Toppers

01 Ranks in Top 10 | **10** Ranks in Top 50 | **26** Ranks in Top 100

RANK 01
SHRUTI SHARMA

RANK 58
FAIZAN AHMED

RANK 96
MINI SHUKLA

RANK 125
MD. MANZAR HUSSAN ANJUM

RANK 133
KISHLAY KUSHWAHA

RANK 176
SHREYA SINGHAL

RANK 203
MOHAMMAD AAQUIB

RANK 270
HARIS SUMAIR

RANK 283
AHMED HASANUZZAMAN CHAUDARY

RANK 389
MOHIBULLAH ANSARI

RANK 447
FAISAL RAZA